• श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः •

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल वंचनकर ।

वर्ष १३ | गौराब्द ४८०, मास—श्रीधर १४, वार—क्षीरोदशायी
शनिवार, ३१ आषाढ़, सम्वत् २०२३, १६ जौलाई, १९६६ | संख्या २

आनन्दचन्द्रिका-स्तोत्रम्

[श्रील-रूप-गोस्वामी-विरचितम्]

श्रीराधिकायै नमः

राधा दामोदरप्रेष्ठा राधिका वार्षभानवी ।
समस्त - वल्लवीवृन्दधम्मिल्लोत्तंसमल्लिका ॥१॥

कृष्णप्रियावलीमुख्या गान्धर्वा ललितासखी ।
विशाखासख्यसुखिनी हरिहृद्भृङ्गमञ्जरी ॥२॥

इमां वृन्दावनेश्वर्या दशनाम मनोरमां ।
आनन्दचन्द्रिकां नाम यो रहस्यां स्तुतिं पठेत् ॥३॥

स क्लेशरहितो भूत्वा भूरिसौभाग्यभूषितः ।
त्वरितं करुणापात्रं राधामाधवयोर्भवेत् ॥४॥

अनुवाद :—

राधा (जो कृष्णकी मनोभीष्ट पूर्ण करती हैं), दामोदर-प्रेष्ठा (जो श्रीदामोदरकी परम प्रियतमा हैं), राधिका (जो अपने कान्त श्रीकृष्णकी आराधना करती हैं), वार्षभानवी (जो वृषभानुराजा की नन्दनी हैं), समस्तवल्लवीवृन्दधम्मिल्लोत्तंसमल्लिका (जो समस्त व्रज रमणियोंकी शिरोभूषण-मल्लिका स्वरूप हैं), कृष्ण प्रियावली मुख्या (जो कृष्णकी सभी प्रियाओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं), गान्धर्वा (जो नृत्य और गीत-विद्यामें प्रवीण हैं),ललितासखी (जो ललिताकी सखी हैं), विशाखासख्य-सुखिनी (जो विशाखाके साथ सख्यभावके कारण अपने को अत्यन्त सुखी समझती हैं), तथा हरिहृद्भृङ्ग-मञ्जरी (जो श्रीकृष्णके मन रूप भ्रमरके विहारके लिये पुष्पमञ्जरी स्वरूप हैं)—ये वृन्दावनेश्वरी श्रीमती राधिकाके दस नाम हैं। जो लोग वृन्दावनेश्वरी श्रीमती राधिकाके 'आनन्दचंद्रिका' नामक अति सुन्दर और गोपनीय स्तोत्रका पाठ करते है, वे सौभाग्यशाली अविद्या आदि क्लेशोंसे रहित होकर शीघ्र ही श्रीराधामाधवके करुणाके पात्र हो जाते हैं ॥१–४॥

कीर्तनमें विज्ञान

भगवान क्या है और उसे किस प्रकार पाया जा सकता है, यह जाननेके लिये मानव-हृदयमें स्वभावतः उत्सुकता रहती है। विभिन्न शास्त्रोंमें ध्यान, धारणा और श्रीहरिनाम-सङ्कीर्तन आदि भिन्न-भिन्न उसके लिए उपाय निर्धारित किये गये हैं। अब यह विचार किया जाय कि उनमें से कौनसा पथ मानव हृदयके लिये सबसे सहज बोधगम्य है ? भगवान असीम हैं । मनुष्यकी चिन्ताशक्ति सीमाबद्ध है। अतः मनुष्यकी ससीम चिन्ताशक्ति द्वारा असीम भगवानकी पूर्ण धारणा असम्भव है। अब ससीम चिन्ताशक्ति द्वारा जब हम अनन्तकी चिन्ता करनेका प्रयत्न करते हैं, तब हम किस सिद्धान्त तक पहुँचते हैं,हम क्या पाते हैं—यह विचार किया जाय।

देखा जाता है कि किसी भी विषयकी चिन्ता करनेके लिये मनको एकाग्र करना अत्यन्त आवश्यक होता है, क्योंकि मन बड़ा ही चंचल और विक्षिप्त होता है। किसी भी एक विषयमें मनको अधिक समय तक स्थिर रखना साधारणतः असम्भव होता है। किसी निर्जन स्थानमें सन्ध्या-आह्निक करने बैठा; परन्तु कहाँ आह्निक और कहाँ मैं ? क्षण-क्षणमें संसार भरके विषय क्रमशः एक-के-बाद दूसरे उदय और लय होते हैं, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार समुद्रमें एक लहर उठती है तथा उसके शान्त होते-न-होते एक दूसरी लहर उपस्थित हो जाती है। पुनः जिस प्रकार एक भ्रमर एक पुष्पसे दूसरे पुष्प पर मधुकी आशासे दौड़ता रहता है, उसी प्रकार मन भी एक विषयसे दूसरे विषयकी

ओर तेजीसे दौड़ने लगता है। अनेक प्रयत्न किया, परन्तु किसी प्रकार भी मनको वशमें न कर सका। मेरी सन्ध्या न हुई। मैं हार कर उठ गया।

विक्षिप्त मनको वशीभूत नहीं करनेसे—मन एकाग्र नहीं होनेसे चिन्तित विषय किस प्रकार धारणा योग्य हो सकता है? यदि विक्षिप्त मनको संयत कर एकाग्र भावसे लक्ष्य-विषयका चिन्तन किया जाय तो वह विषय बोधगम्य हो सकता है। यदि कोई बालक अपने सामने पुस्तक रख कर खेल-कूद और अपने साथियोंकी चिन्ता करे तो वह अपने पाठको कैसे समझ सकता है अथवा उसे कैसे याद कर सकता है? अर्थात् न तो वह पाठको समझ ही सकता है और न तो याद ही कर सकता है।

भगवानका विषय अनन्त, असीम और विराट है। ऐसे अनन्त, असीम और विराट भगवद्-विषय का चिन्तन करनेके लिये मनको किस प्रकार एकाग्र करना उचित है, यह विचारणीय है। शब्दमय सङ्कीर्तन आदिकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करनेसे पूर्व चिन्तामय, ज्ञानमय योगके विषयमें कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। योगसे या चित्तवृत्तिको निरोध करके मन-संयोग पूर्वक भगवानका चिन्तन करनेकी प्रथा है। मन क्यों सर्वदा विक्षिप्त या चंचल रहता है? तथा योगाभ्यासके द्वारा वह कैसे स्थिर रह सकता है—इसका विज्ञानसम्मत क्या कारण हो सकता है, इसे सबसे पहले विचार करनेकी आवश्यकता है। उसके पश्चात् यह विचार उपस्थित किया जायगा कि अन्यान्य साधनोंकी अपेक्षा हरिनाम संकीर्तन द्वारा मनको अति सहज ही स्थिर किया जा सकता है कि नहीं? जिस प्रकार अन्धकार प्रकाशके सौन्दर्यकी वृद्धि करता है तथा जिस प्रकार कोई काली वस्तु सफेद वस्तुकी उत्कर्षताका ज्ञापन करती है और जिस प्रकार कोई निकृष्ट वस्तु उत्कृष्ट वस्तुकी महमा स्पष्ट करती है, उसी प्रकार शब्दमय नाम-संकीर्तनकी श्रेष्ठता उपलब्धि करनेके लिये योग या प्राणायाम क्या है, इसे पहले ही भली-भाँति समझना आवश्यक है।

संसारकी समस्त सृष्ट वस्तुएँ अणु-परमाणुओं द्वारा गठित हैं। ये अणु परमाणु समूह सर्वदा परस्पर एक-दूसरेको आकर्षण करते हैं। इसलिये स्वल्प परमाणुओं द्वारा गठित जगत अधिक परमाणुओं द्वारा गठित सूर्य द्वारा अकृष्ट होकर उसके ही चारों ओर चक्कर लगा रहा है। अणु-परमाणुओं द्वारा गठित हमारे शरीर भी उसकी अपेक्षा अधिक परमाणुओं द्वारा गठित पृथ्वी द्वारा आकृष्ट होकर उससे संलग्न हैं। इसीको देहका गुरुत्व कहते हैं। थोड़ेसे परमाणुओंसे गठित हुआ दुबले-पतले मनुष्यका शरीर अधिक परमाणुओंसे गठित स्थूलकाय मनुष्यसे हल्का होता है। इसका कारण यह है कि मोटे मनुष्यके शरीरमें अधिक परमाणु रहनेसे वह पृथ्वी द्वारा अधिकतर रूपमें आकर्षित होता है। इस विषयको सभी वैज्ञानिक भलीभाँति जानते हैं।

पृथ्वीका माध्याकर्षण एक आनुमानिक सरल रेखाके ऊपर स्थित है। यदि एक सीधे डण्डेके ठीक मध्य भागमें, ऊपरसे नीचे तक, आनुमानिक सरल रेखा विशिष्ट एक छेद किया जाय और उस डण्डेको पृथ्वीके ऊपर इस प्रकार रखा जाय कि पृथ्वीकी

माध्याकर्षण रेखा डण्डेके मध्यवर्ती आनुमानिक छिद्रपथके भीतर पड़े, तो वह डण्डा पृथ्वीके ऊपर खड़ा रहनेमें समर्थ होता है। डण्डा तनिक भी टेढ़ा या तिरछा होगा तो वह स्थिर न रह सकेगा। पृथ्वीका माध्याकर्षण डण्डेके एक बिन्दुसे दूसरी बिन्दुमें प्रवेश करनेसे डण्डेकी चंचलता-हेतु उसका पतन अवश्यम्भावी है। नट इसी प्रक्रियासे किसी तार या रस्सेके ऊपर अपने शरीरको साध कर चलता-फिरता है या खड़ा रहता है। हमारे शरीर में जो मेरुदण्ड है, वह शरीरके ठीक मध्यस्थलमें स्थित रहनेके कारण उसे बिल्कुल सीधा रखनेसे मलद्वारसे मस्तक पर्यन्त मेरुदण्डके बीचले स्थानके छिद्र पथमें पृथ्वीका माध्यमाकर्षण रेखा पतित होती है योगाभ्यास-प्रक्रियामें मेरुदण्डको इसी प्रकार सीधा रखनेकी प्रथा है।

अब अणु क्या है—यह देखा जाय। वैज्ञानिकों का ऐसा कहना है कि अणु एक धन (Plus) और आठ ऋण (Minus) तणित् कणों द्वारा गठित हुआ है। प्रत्येक अणुमें आठ ऋण और एक धन तड़ित कण प्रकृति-पुरुषकी भाँति निवास करते हैं। ऐसा देखा गया है कि दो सजातीय तड़ित कणोंमें परस्पर विकर्षण तथा दो विजातीय तड़ित कणोंमें परस्पर आकर्षण विद्यमान रहता है। अब दो विजातीय तड़ितकण (Plus और Minus विद्युत कण) परस्पर संयुक्त होने पर जो अणु गठित होता है, उसमें किंचित मात्रामें आकर्षण शक्ति रह जाती है। इसीसे पृथ्वीमें माध्याकर्षणी शक्तिका उद्भव हुआ है। परन्तु प्रत्येक सजातीय तड़ितकण जब अणुसे विभक्त होकर पृथक होजाते हैं, तब उन प्रत्येक कणोंमें माध्याकर्षण शक्तिकी अपेक्षा वस्तु-गुण ही अधिक होता है।

मान लें, आप एक पत्थरके टुकड़ेको लेकर एक दूसरे पत्थरके टुकड़े पर आघात करने लगे। तब क्या होता है, उस आघातसे आगकी चिनगारियाँ निकल कर शून्यमें मिलने लग जाती है। इस प्रकार करते-करते सारा पत्थर समाप्त होजाता है। इससे आप क्या समझे? इससे यह समझा गया कि ये चिनगारियाँ, संघर्षसे उत्तेजित पत्थरके प्रत्येक अणुके भिन्नजातीय तड़ित कण हैं जो सुप्तावस्थासे विभक्त होकर पुनः शून्यमें अपने-अपने स्वभाव द्वारा संयुक्त होकर अणुरूप धारण कर शून्यमें विलीन होती जारही हैं। ये सारे विक्षिप्त अणु समूह यदि फिरसे संयुक्त हो जाँय, तब जो पत्थर संघर्ष द्वारा क्षय प्राप्त हो गया है, वह पुनर्गठित हो जायगा। अप्राकृत श्रीनाम इन प्राकृत-विज्ञानके विचारोंसे अनेक-अनेक ऊपर स्थित है—इसकी उपलब्धिका विषय होने पर जीव कृतार्थ हो जाता है।

हे सुधी पाठक-पाठिकावर्ग! जो कृष्णकीर्तन-सुरधूनीकी अमृतधाराको जगतमें प्रकटित करके गौरकीर्तन-रसहीन मरुजगतको सदा-सर्वदा सुशीतल करते हैं, जो स्वयं अधोक्षजकी सेवाका अनुष्ठान कर के सौभाग्यवान जीवोंको अधोक्षज-सेवा रस पान कराते हैं, उन्हींश्रीगुरुदेवके चरणकमलों में पुनः-पुनः प्रणाम करके हम लोग भी सदा सर्वदा श्रीगौरसुन्दर द्वारा प्रवर्तित कीर्तनका गान करके जन्म और जीवनको सार्थक करें।

—*जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर*

प्रश्नोत्तर

[माया तत्त्व]

१. क्या सत्त्वगुण मायिक और बन्धनका कारण है ?

"हाँ। सत्त्वगुण मायिक और बन्धनका कारण है। मायाकी बेड़िया तीन प्रकारकी होती हैं—(१) सत्त्वगुणसे बनी हुई बेड़ी, (२) रजोगुणसे बनी हुई बेड़ी तथा (३) तमोगुणसे बनी बेड़ी। अपराधी जीवोंको माया उनके अपराधोंके तारतम्यके अनुसार यथा-उचित इन तीन प्रकारकी बेड़ियोंसे बान्धती है। जीव, चाहे सात्त्विक हों, चाहे राजसिक हों अथवा तामसिक हों—सभी बेड़ियोंद्वारा ही बद्ध हैं। सोनेकी बेड़ी, चाँदीकी बेड़ी, लोहेकी बेड़ी—सभी बेड़ियाँ ही है, चाहे वे जिस किसी भी धातुसे बनी हों। उनमेंसे किसी भी बेड़ी द्वारा बाँधे जाने पर कष्ट और बन्धन एक समान ही होता है। वे अच्छी चीज नहीं हैं।"

(जै. ध. १६ अ.)

२. किस इन्द्रियद्वारा मायाके किस विषयका भोग किया जाता है ?

"आँखोंसे रूप, कानसे शब्द, नासिकासे गन्ध, रसनासे रस और त्वचासे मृदुता, काठिन्य, गरमी, सर्दी आदि विषयोंका भोग होता है।"

(अत्याहार, स. तो, १०।९)

३. मायाबद्ध जीवके सुखका स्वरूप क्या है ?

"दुःखपूर्ण गृहधर्ममें नाना प्रकारके दुःखोंमेंसे किसी समय कोई दुःख दूर हो जाने पर संसारी व्यक्ति उसे ही—'सुख प्राप्त हुआ' मानते हैं। इस संसारमें जिसे सुख कहा जाता है, वह वास्तवमें सुख नहीं है, बल्कि वह किंचत मात्रामें दुःखका प्रतिकार मात्र है।"

(श्री. भा. मा. ८।१३)

४. भवसागरमें मायाबद्ध जीवकी क्या दशा होती है ?

"निजकर्म-दोष फले, पड़ि भवार्णव जले,
हाबुडुबु खाई कत काल।
साँतारि साँतारि जाई, सिन्धु अन्त नाहि पाई,
भवसिन्धु अनन्त विशाल॥"

—अर्थात् जीव अपने कर्म दोषसे अगाध और असीम भवसागरमें न जाने कितने समयसे डूब-उतरा रहा है, कभी-कभी तैरकर पार करनेकी चेष्टा करता है परन्तु थक जाता है, हार जाता है, कहीं भी किनारा नहीं दीखता, चारों ओर असीम और अनन्त जलराशि ही दिखलायी पड़ती है। इस प्रकार यह भव-समुद्र अत्यन्त विशाल है।

—(यामुन भावावली १०।१)

५. क्या माया कृष्णका स्पर्श कर सकती है ?

"जिस प्रकार छाया सूर्यका स्पर्श नहीं कर सकती, उसी प्रकार माया भी कृष्णका स्पर्श नहीं

कर सकती। मायाकी तो बात ही क्या मायाश्रित जीवके लिये भी श्रीकृष्णका साक्षात्कार करना अतीव दुर्लभ है। केवल श्रीकृष्णकी कृपासे ही जीव भक्तिद्वारा पवित्र हुए हृदयमें समाधियोग द्वारा भगवत् साक्षात्कार कर सकता है।"

(कृष्ण संहिता)

जीवतत्त्व

१. जीवका स्वरूप, उसका पतन और नित्य सेवाकी प्राप्तिका इतिहास क्या है ?

"जीव चित्कण स्वरूप है। परन्तु कृष्ण-विमुखतारूप अपराध होने पर माया उसे अपनी आकर्षणशक्तिसे खींचकर मायिक जगतमें फेंक देती है। वह ज्योंही मायिक जगतमें उपस्थित होता है, त्योंही दुर्गा देवी उसे कैदीकी पोषककी भाँति पंचभूत और तन्मात्रा तथा ग्यारह इन्द्रियोंसे युक्त एक स्थूल शरीरसे आच्छादित करके कर्मचक्रमें फेंक देती हैं। इससे जीव कर्मचक्रमें भ्रमण करता हुआ सुख-दुख और स्वर्ग-नरक आदि भोग करता है। इसके अतिरिक्त स्थूल शरीरके भीतर मन-बुद्धि-अहंकार रूप एक लिंग शरीर भी देती हैं। जीव एक स्थूल शरीरको छोड़कर उस लिंग शरीरके साथ दूसरे स्थूल शरीरको आश्रय करता है। जब तक मुक्ति नहीं हो जाती, तब तक जीवका लिंग शरीर दूर नहीं होता और जब तक लिंग शरीर दूर नहीं होता तब तक जीव कर्म-चक्रमें फँसा हुआ ऊँच-नीच विभिन्न योनियोंमें भ्रमण करता हुआ सुख-दुख भोग करता रहता है। लिंग शरीर दूर होने पर बिरजामें स्नानकर जीव हरिधाममें गमन करता है। यह सब कार्य दुर्गाजी ही गोविन्दकी इच्छासे किया करती हैं।"

–(ब्र. सं. ५।४४)

२. जीवकी कौन-कौन-सी विभिन्न अवस्थाएँ हैं ?

"मायाबद्ध जीव पाँच प्रकारकी अवस्थाओंमें अवस्थित हैं। इन अवस्थाओंके कारण उन जीवों को (१) आच्छादित-चेतन, (२) संकुचित-चेतन, (३) मुकुलित-चेतन, (४) विकशित-चेतन और (५) पूर्णविकशित-चेतन भी कहते हैं।"

–(जैवधर्म १६ अ.)

३. जीवकी शुद्धावस्था और बद्धावस्था कैसी होती हैं ?

"जीवकी दो अवस्थाएँ हैं—शुद्धावस्था और बद्धावस्था। शुद्ध अवस्थामें जीव केवल चिन्मय है। उस समय जड़से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। शुद्धा अवस्थामें भी जीव अणु पदार्थ है। उसी अणुत्वके कारण जीवके अवस्थान्तर प्राप्त होनेकी संभावना होती है। वृहत् चैतन्य-स्वरूप कृष्णका स्वभावतः अवस्थान्तर नहीं है। वे वस्तुतः वृहत्, पूर्ण शुद्ध और सनातन हैं। जीव वस्तुतः अणु, खण्ड और अशुद्ध होनेके योग्य और अर्वाचीन है, किन्तु धर्मतः वह वृहद् अखण्ड, शुद्ध और सनातन है। जीव जब तक शुद्ध है, तभी तक उसके स्वधर्मका विमल परिचय मिलता है। जीव जब मायाके सम्बन्धसे अशुद्ध होता है, तभी स्वधर्ममें विकार होनेके कारण वह अविशुद्ध, अनाश्रित और सुख-दुःखसे पिसा हुआ रहता है। जीवको कृष्णके दास्यभावकी विस्मृति होते ही संसार दशा उपस्थित होती है।

जीव जब तक शुद्ध रहता है, तभी तक उसे स्वधर्मका अभिमान रहता है। वह अपनेको कृष्ण का दास समझ कर अभिमान करता है। मायाके सम्बन्धसे अशुद्ध होते ही वह अभिमान संकुचित होकर भिन्न-भिन्न आकार धारण करता है। माया के सम्बन्धसे जीवका शुद्ध-स्वरूप लिंगदेह और स्थूल देहसे आवृत हो जाता है।

विशुद्ध प्रेम ही जीवका स्वधर्म है। सुख-दुःख, राग-द्वेष आदिके रूपमें वही प्रेम विकृत भावसे लिंग-शरीरमें उदित होता है। भोजन-पान और जड़संग सुखरूप वह विकार अधिकतर घनीभूत होकर स्थूल शरीरमें दिखलायी देता है। अब देखिए, जीवका नित्यधर्म केवल शुद्ध अवस्थामें प्रकाशमान होता है। बद्धावस्थामें जिस धर्मका उदय होता है, वह नैमित्तिक है। नित्यधर्म स्वभाव से ही पूर्ण, शुद्ध और सनातन है।"

–(जैवधर्म अ. २।१५-१६)

४. अनादि बहिर्मुखता किसे कहते हैं ?

" कृष्णकी दासता (सेवा-वृति) ही जीवका नित्यधर्म है। उसे भूल कर जीव मायाके वशीभूत हो पड़ता है। सुतरां तभीसे जीव कृष्णसे बहिर्मुख हो जाता है। क्योंकि मायिक जगतमें आनेके समय ही यह बहिर्मुखता परिलक्षित होती है; अतः मायिक जगतके कालके भीतर जीवके पतनका इतिहास नहीं है। इसलिये 'अनादि बहिर्मुख शब्द का व्यवहार किया है। बहिर्मुखता और मायामें प्रवेश करनेके कालसे ही जीवका नित्यधर्म विकृत हुआ है।"

–(जैवधर्म अ. १।१२)

५. आच्छादित चेतन किसे कहते हैं ?

"वृक्ष, तृण, और पत्थर आदि योनियोंको प्राप्त जीवोंको आच्छादित चेतन कहते हैं; इनके चेतन धर्मका परिचय लुप्तप्राय होता है।"

(जैवधर्म अ. १६)

६. संकुचित-चेतन किसे कहते हैं ?

"पशु, पक्षी, साँप, मछली आदि जलचर, कीट पतंग–ये संकुचित चेतन हैं।"

–(जैवधर्म अ. १६)

—जगद्गुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

संदर्भ-सार

[कृष्णोपनिषद ६]

श्रीमद्भगवद्गीताकी भाँति गोपाल-तापनी उपनिषदमें भी सनकादि ऋषियोंकी उक्ति द्वारा ब्रह्माजीकी वाणीमें यह जाना जाता है कि श्रीकृष्ण ही परम देवता हैं; यथा—

'कः परमो देवः कुतो मृत्युर्बिभेति कस्य। विज्ञानेनाखिलं विज्ञात भवति, केनेदं विश्वं संसरति'

सनकादि मुनियोंने लोकपितामह ब्रह्माजीसे पूछा—ब्रह्मन ! परम देवता कौन है ? मृत्यु किससे डरती है ? किसे जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है ? और किसके द्वारा इस जगतकी सृष्टि, स्थिति और लय होता है ? इसके उत्तरमें ब्रह्माजी कहते हैं—

'कृष्णो वै परमं दैवतम्। गोविन्दान्मृत्युर्बिभेति। गोपीजनवल्लभज्ञानेन तज् ज्ञातं भवति । स्वाहयेदं संसरति ।'

अर्थात् 'कृष' धातु सत्तावाचक है और 'ण' प्रत्यय आनन्दवाचक है; इन दोनोंके एक होनेके कारण अथवा भक्तोंके पापोंको आकर्षण अर्थात् दूर करनेके कारण 'कृष्ण' ही परम देवता (सर्वश्रेष्ठ देवता) है। इस 'गोविन्द' से ही मृत्यु भय खाती है। 'गोपीजनवल्लभ' को जान लेनेपर सब कुछ जानना हो जाता है। 'स्वाहा' (माया) द्वारा यह जगत् उत्पन्न हुआ है।

फिर प्रश्न होता है—

'कः कृष्णो गोविन्दश्च कोऽसाविति गोपीजनवल्लभः कः का स्वाहेति। तानुवाच ब्राह्मणः— पापकर्षणो गोभूमिवेदविदितो वेदितो गोपीजनाविद्या-कला प्रेरकस्तान्माया चेति।'

—कृष्ण कौन हैं ? गोविन्द कौन हैं ? और गोपीजनवल्लभ ही कौन हैं ? तथा स्वाहा कौन हैं ? इनका उत्तर देते हुए ब्रह्माजी कहते हैं—पाप-आकर्षण करते हैं, इसलिये सच्चिदानन्दरूपी श्रीकृष्ण ही परमदेवता हैं। 'गो'-शब्दसे भूमि और वेदका बोध होता है; इनमें जो विख्यात (रक्षक और पालक रूपमें) हैं और जो द्रष्टा हैं, वे गोविन्द हैं, इन गोविन्दसे मृत्यु डरती है । 'गुप्' धातुका अर्थ है—पालन करना। इससे 'गोपी' शब्दका अर्थ पालनी शक्ति है; जनका अर्थ समूह। इसलिये गोपीजन—पालनीशक्तियोंका समूह; इनके वल्लभ अर्थात् स्वामी या ईश्वर; ये गोपीजनवल्लभ सबके अधिष्ठानके रूपमें वर्तमान हैं। उनके ज्ञानसे समग्र जगत् जाना जाता है। उनके अधीन जो माया हैं, उन्हींसे यह विश्व उत्पन्न होता है।

अन्तमें गोपालपातनीके उपसंहारमें कहते हैं—

'तस्मात् कृष्ण एव परो देवस्तं ध्यायेत्तं रसेत्तं यजेदित्यां तद् सदिति।' अर्थात्, अतएव सबसे श्रेष्ठ होनेके कारण श्रीकृष्ण ही परम देवता हैं, उन्हीं का ध्यान, उन्हींका रसन (आस्वादन या कीर्तन),

उन्हींका यजन अर्थात् अर्चन और उन्हींका प्रेमपूर्वक भजन करना चाहिये। वे ही ॐ तत् सत्—इन तीनों शब्दोंके प्रतिपाद्य हैं।

निखिल अवतार और अवतारीसे विलक्षण जो भगवत्ताके लक्षणसमूह हैं वे श्रीकृष्णमें ही विद्यामान हैं। पद्मपुराणमें ब्रह्माजी कहते हैं—

शृणु नारद वक्ष्यामि पादयोश्चिह्न लक्षणम्।
भगवत् कृष्णरूपस्य ह्यानन्दैकघनस्य च॥
अवतारा ह्यसंख्याताः कथिता मे तवानघ।
परं सम्यक् प्रवक्ष्यामि कृष्णस्तु भगवान स्वयं॥
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं मुनीनाञ्च तथैव च।
आविर्भूतस्तु भगवान् स्वानां प्रियचिकीर्षया॥
यैरेव ज्ञायते देवो भगवान भक्तवत्सलः।
तान्यहं वेद नान्योऽस्ति सत्यमेतन्मयोदितम्॥
षोड़शैव तु चिह्नानि मया दृष्टानि तत्पदे।
दक्षिणे अष्टचिह्नानि इतरे सप्त एव च॥
ध्वजा पद्मं तथा वज्रमंकुशो यव एव च।
स्वस्तिकश्चोर्द्ध रेखा च अष्टकोणस्तथैव च॥
सप्तान्यानि प्रवक्ष्यामि साम्प्रतं वैष्णवोत्तम।
इन्द्रचापं त्रिकोणञ्च कलसञ्चार्द्धचन्द्रकम्॥
अम्बरं मत्स्यचिह्नञ्च गोष्पदं सप्तमम् स्मृतम्।
अङ्गान्येतानि भो विद्वन् दृश्यन्ते तु यदा कदा॥
कृष्णाख्यन्तु परंब्रह्म भुवि जातं न संशयः।
द्वयं वाथ त्रयं वाथ चत्वारः पञ्च एव वा॥
दृश्यन्ते वैष्णवश्रेष्ठ अवतारे कथञ्चन।
षोड़शन्तु तथा चिह्नं शृणु देवर्षिसत्तम्॥
जम्बुफल सामाकारं दृश्यते यत्र कुत्रचित्॥

ब्रह्माजी बोले—नारद ! केवल आनन्दघन भगवान श्रीकृष्णचन्द्रके श्रीचरणकमलोंमें विराजमान जिन चिह्नोंके द्वारा भगवत्ताके लक्षण परिस्फुट है, उनको बतला रहा हूँ, उनका सावधानी से श्रवण करो। मैंने तुमसे असंख्य अवतारोंकी कथाएँ कही हैं। अब उन सबके सार-स्वरूप बतला रहा हूँ—श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान हैं; देवता और ऋषियोंकी कार्य-सिद्धिके लिये और अपने लीला-वैचित्र्यके द्वारा अपने प्रिय परिजनोंकी प्रीति सम्पादनके लिये ये स्वयं-भगवान श्रीकृष्ण जगत्में आविर्भूत होते हैं। जिन लक्षणोंके द्वारा उन भक्त-वत्सल भगवानको पहिचाना जाता है, उन्हें मैं जानता हूँ, दूसरा कोई भी उन्हें नहीं जानता। मैंने श्रीकृष्णके श्रीचरणकमलोंमें सोलह चिह्न दर्शन किये हैं। उनके दाहिने चरणमें आठ चिह्न हैं तथा बायें चरणमें सात चिह्न हैं। आठ चिह्न ये हैं—ध्वजा, पद्म, वज्र, अंकुश, यव, स्वस्तिक, उर्द्ध रेखा और अष्टकोण। सात लक्षण हैं—इन्द्रधनुष, त्रिकोण, कलस, अर्द्धचन्द्र, आकाश मछली, और गोष्पद। सोलहवाँ चिह्न है—जामुनके फलकी आकृति। दूसरे-दूसरे अवतारोंमेंसे किसी-किसीमें इनमेंसे दो चिह्न, किसीमें चार और किसीमें पाँच चिह्न पाये जाते हैं। किसी भी दूसरे अवतारमें स्वयं-भगवत्ता सूचक ये सोलहों चिह्न नहीं देखे जाते हैं। इसलिये स्वयं भगवत्ता केवल श्रीकृष्णमें ही है। उज्ज्वल-नीलमणिकी टीकामें उन्नीस प्रकारके चिह्नोंका उल्लेख है। बायें चरणमें—अगूँठेके मूलमें यव, उसके नीचे चक्र, उसके नीचे छत्र, उसके नीचे वलय, अगूँठे और तर्जनीके जोड़से आरम्भ होकर अर्द्धचरण तक उर्द्ध रेखा, मध्यमाके नीचे कमल, उसके नीचे पताका युक्त ध्वजा, उससे नीचे बल्ली

और पुष्प, कनिष्ठाके नीचे अंकुश, एड़ीमें अर्द्धचन्द्र। दाहिने चरणमें अगूँठेके मूलमें शंख, उससे नीचे गदा, कनिष्ठाके नीचे वेदी, उसके नीचे कुण्डल, उसके नीचे शक्ति, तर्ज्जनी आदि अँगुलियोंके नीचे पर्वत। पर्वतके नीचे रथ और एड़ीमें मत्स्य।

अब विष्णुपुराणमें 'भगवत्'-शब्दकी निरुक्ति इस प्रकार दी गयी है—

संभर्त्तेति तथा भर्त्ता भकारार्थोद्वयान्वितः।
नेता गमयिता स्रष्टा गकारार्थस्तथा मुने॥
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णा भग इतीङ्गना॥
वसन्ति तत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि।
स च भूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽव्ययः॥
ज्ञान शक्तिबलैश्वर्य - वीर्यतेजां स्यशेषतः।
भगवच्छब्द वाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥

'भग'-शब्दके आगे 'मतुप्' (वतुप्) प्रत्यय लग कर 'भगवान' शब्द निष्पन्न हुआ है। अब भ, ग, व—इन तीनों अक्षरोंके अलग-अगल अर्थ कर रहे हैं—भ-कारका अर्थ भर्त्ता और संभर्त्ता है। ग-कार का अर्थ—नेता, गमयिता और स्रष्टा है; 'भग'-शब्दका यह एक प्रकारका अर्थ है। दूसरा अर्थ—समग्र ऐश्वर्य,वीर्य,यश, ज्ञान,वैराग्य और श्री-इनकी समष्टिको भग कहते हैं। व-कारका अर्थ है—उन सर्वभूतोंके अन्तर्यामी अखिल परमात्मामें सम्पूर्ण प्राणी वास करते हैं और वे भी निखिल प्राणियोंमें वास करते हैं। अतएव वे अव्यय हैं। संभर्त्ता=अपने भक्तोंका पोषण करनेवाला, भर्त्ता=सबको धारण करने वाला या स्थापक, नेता=निज भक्ति का फल जो प्रेम है, उसका प्रापक (पाने वाला)। गमयिता=निजलोक प्रापक। स्रष्टा=अपने भक्तों के हृदयमें अपने रुचिकर गुणोंको प्रकट करने वाला। अपने भक्तोंका पोषण करना—यह श्रीकृष्णका निजस्व कार्य है और जगतका पोषण करना आदि—कार्योंको वे स्वयं न करके पुरुषावतार, गुणावतार और लीलावतारोंके द्वारा करवाते हैं। ऐश्वर्य=सर्ववशीकारिता, वीर्य=मणि और मन्त्र आदिकी भाँति अचिन्त्य प्रभाव, यश=वाक्य, मन और शरीरके सद्गुणोंकी प्रख्याति। श्री=सर्व प्रकारकी सम्पत्ति या रूप, ज्ञान=सर्वज्ञता और वैराग्य=सांसारिक वस्तुओं के प्रति अनासक्ति। इङ्गना=संज्ञा (नाम, चिह्न) श्रीव्यासदेवके समाधिलब्ध, वेदान्तके भाष्यस्वरूप श्रीमद्भागवतके पहले श्लोकमें श्रीकृष्णके परतमत्व का स्पष्टरूपेण उल्लेख है—

यन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि।

परम धीमहि। 'परं' शब्दका अर्थ श्रीकृष्णसे है, उनका ध्यान करता हूँ। सत्यं—इस पद द्वारा परमब्रह्मके स्वरूप लक्षणका निर्देश किया है। सत्य शब्दका प्रयोग श्रीकृष्णके लिये ही है। कृष्ण ही सत्य है, त्रिसत्य हैं और वही परम सत्य हैं—यह दशमस्कंधमें देवगण श्रीकृष्णकी गर्भ स्तुतिमें कहते हैं—

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितञ्च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥

अर्थात् हे भगवन ! आप सत्यसङ्कल्प होनेके कारण सत्यव्रत हैं, आपको प्राप्त होनेका श्रेष्ठ उपाय सत्य होनेके कारण आप सत्यपर हैं, भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन त्रिविध कालोंमें वर्तमान रहनेके कारण आप त्रिसत्य हैं। पंचभूतोंकी उत्पत्तिके मूल कारण आप ही हैं। उत्पत्तिके पश्चात् भी आप उसमें अन्तर्यामीके रूपमें विराजमान रहते हैं और प्रलयकालमें भी केवल आप ही वर्तमान रहते हैं। आप सुसत्य वचन और समदर्शन—इन दोनोंके प्रवर्त्तक हैं। श्रीकृष्ण नित्य वर्तमान हैं। अतएव निराकार ब्रह्म सत्त्वगुणोपहित होकर अवतार ग्रहण करता है—मायावादियोंका यह मत खण्डित हुआ। भगवानमें अङ्ग और अङ्गी अथवा अवयव और अवयवीका भेद नहीं है अर्थात भगवानका श्रीविग्रह और भगवानकी आत्मा—पृथक पृथक दो वस्तुएँ नहीं हैं। 'धाम्ना स्वेन' इत्यादि वाक्यों द्वारा वे अपने स्वरूपसे अभिन्न गोलक धाममें नित्य विराजमान रहते हैं, वे किस प्रकार विराजमान रहते हैं—कुहक अर्थात् मायाके कार्य-लक्षण कपटताको दूर कर विराजमान रहते हैं। उनका धाम स्वरूप शक्तिसे प्रकटित होनेके कारण वहाँ भी मायाका कार्य नहीं है। 'आद्यस्य'—श्रीनन्दनन्दन नित्यधाममें नित्य विराजमान रहनेके कारण वे ही आद्य हैं। किसी विशेष प्रयोजनकी सिद्धिके लिये वे भौम जगतमें अपनी जन्म लीला प्रकट करते हैं। 'अन्वयादितरतश्च'—जिस कारणसे उनका श्री-वसुदेवके घरमें जन्म है, उसी कारणसे श्रीव्रजराज नन्दमहाराजके घर भी पुत्र भाव अङ्गीकार करके उनका आविर्भाव है। किस कारण से ?—उसे कह रहे हैं—'अर्थेषु अभिज्ञः'। अर्थेषु—कंस वञ्चनादि कार्योंमें अभिज्ञ अथवा दास, सखा, माता-पिता और प्रेयसी-भाव वाले व्रजवासियोंके साथ सबको आनन्द देने वाली लीला-सिद्धिसे अभिज्ञ हैं। अपूर्व लीला-रसमें अभिज्ञता के हेतु वे 'स्वराट' हैं। गोकुलमें व्रजवासियोंके प्रेमके वशीभूत होकर जो नित्य विराजित है। उहोंने आदि कवि ब्रह्माको विस्मित करनेके लिये उनके हृदयमें ब्रह्मका अर्थात् सत्यज्ञानसत्तानन्दैकरसमय वैभवका विस्तार किया था। 'मुह्यन्ति यत सुरयः तेजोवारिमृदां विनिमयः यत्र त्रिसर्गोऽमृषा—इन पदोंमें श्रीकृष्णलीलाकी चमत्कारिताका वर्णन हुआ है। वैसी अलौकिक लीलाके सम्बन्धमें उनके भक्तजन भी मोहित हो जाते हैं—प्रेमकी अधिकताके कारण विवश हो पड़ते हैं। तेज, जल और मिट्टीमें परस्परके धर्म प्रवर्तित होते हैं; श्रीकृष्णकी श्रीमुख-शोभाके सामने चन्द्रादिकी शोभा पराभूत, निस्तेज हो जाती है। पुनः वे अपने अङ्गकी कान्तिसे निस्तेज वस्तुको भी द्युतिमान बना देते हैं। जल द्रव-पदार्थ है, परन्तु उनके रूपको देख कर तथा बन्शीध्वनि श्रवण कर वह जड़ भाव (कठिनता) को प्राप्त हो जाता है तथा मिट्टी-पत्थर जैसे कठिन पदार्थ भी तरल हो जाते हैं। उनका त्रिसर्ग—मथुरा, द्वारका और गोकुल अमृषा अथात् सत्य है। उन परब्रह्म श्रीकृष्णका हम ध्यान करते हैं। विश्व नित्य नहीं हैं, परन्तु भगवद्धामकी नित्यताका कभी भी व्यभिचार नहीं होता।

श्रीमद्भागवतके उपसंहारके श्लोकका भी तात्पर्य श्रीकृष्णमें पर्यवसित होता है—

कस्मै येन विभाषितोऽयमतुल ज्ञान प्रदीपः पुरा ।
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ॥
योगीन्द्राय तदात्मना च भगवद्रातायं कारुण्यतः।
तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि ॥
(१२।१३।१४)

—जिन्होंने कल्पके प्रारम्भमें इस अतुल ज्ञान-प्रदीपरूप श्रीमद्भागवतका प्रकाश ब्रह्माके हृदयमें किया, तदन्तर नारद, कृष्ण द्वैपायन, योगीन्द्र शुकदेव और परीक्षितके निकट कृपा करके इसको प्रकाशित किया है, उन शुद्ध, निर्मल, शोकरहित, अमृत-स्वरूप परम सत्यका (श्रीकृष्णका) हम ध्यान करते हैं ।

—त्रिदण्डी स्वामी श्रीमद्भक्ति भूदेव श्रौतीमहाराज

श्रीरूप गोस्वामी और प्रेम-तत्त्व

भक्ति प्रिय माधवकी तुष्टि को उपाय कहा,
जगमें का कोई बखान भी करि सकै ।
व्याध को आचरण कहा, ध्रुवकी अवस्था कहा,
गजेन्द्रकी योग्यता को कथन कौन करि सकै ।
कुब्जा को रूप कहाँ, सुदामा धन-शक्ति कहा,
विदुर की जाति का बताइ कौन जग सकै ।
यादव-उग्रसेन को पौरुष महान कहा;
कृष्ण जगद्देव कैसे वशीभूत करि सकै ॥
(श्रीकेशव)

उपर्युक्त पदको हृदयङ्गम करनेसे ज्ञात होता है कि भगवान केवल भक्ति-प्रिय या भक्तवत्सल ही हैं, जिसके प्रमाण वेद-उपनिषद्, पुराणेतिहासमें और विभिन्न सम्प्रदायोंके प्रामाणिक ग्रन्थोंमें प्रचुरतासे उपलब्ध होते हैं । सूरदासके हृदयमें ऐसी टीस उठी कि वे उसे सूरसागरके रूपमें भूतलमें प्रकटित कर अमर बन गये । गोस्वामी तुलसीदास भी इसी पावन भक्ति-रसमें तन्मय हो गये और सहसा कहने लगे—

कहा कहूँ छबि आपकी भले बने हो नाथ ।
तुलसी मस्तक जब नवै धनुष-बाण लेहु हाथ ॥

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि भक्ति ही एक ऐसा मार्मिक रहस्य है जिसको—'परमस्वादु अति ही जो मनोहर अमर तोष उपजावै ।' का कथन ही स्पष्ट एवं व्यक्त कर सकता है ।

मीरा भी इसी भक्तिरसका पान कर लोकलाज कुलकानिको तिलाञ्जलि देकर कृष्ण-प्रेमकी दीवानी बन गयी । श्रीपृथ्वी सिंह चौहानने उनकी विचित्र दशाका वर्णन बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें किया है—

लोक लाज छोड़ि,दौड़ दौड़ हरि मन्दिर को,
साधुसंग बैठनेको मजबूर हो गई ।
निरख-निरख नूर पूर नन्दलालजी का,
सरक सरक दुनियाँ से दूर हो गई ॥
कौड़ी-तौल बेंच अपने को गिरिधारी हाथ,
दिव्य अनमोल हीरा कोहनूर हो गई ।
प्रेमी श्याम सुन्दरके सीनेमें समाने हेतु,
'मीरा' नाच-नाच के पसीने चूर हो गई ॥

अब प्रश्न होता है कि भक्तिका उदय किस प्रकार होता है ? इस प्रश्नका समाधान करना अत्यन्त दुष्कर है। फिर भी विश्वके सभी आस्तिक जन निर्विवाद रूपमें ऐसा स्वीकार करते हैं कि भक्तिके अभ्युदयमें भगवत्कृपा ही ऐसा अमोघ अस्त्र है, जिससे इसका आविर्भाव अनायास ही हृदयोदधि में होने लगता है। श्रीरूप गोस्वामी जैसे मूर्द्धन्य श्रेणीके दार्शनिक एवं प्रेमी सन्तने भक्ति उदयके तीन प्रकार बतलाये हैं—(१) भगवानकी कृपासे (२) भगवद्भक्तोंकी कृपासे, (३) साधनसे। इनमेंसे कृपाद्वारा भक्ति उदयका उदाहरण विरला ही देखा जाता है। इसलिये सर्वसाधारणके लिये भक्तिको उदय करानेमें साधन ही अवलम्बनीय है। यही साधारण नियम है। साधन भी दो प्रकारके होते हैं—वैधी साधन और रागानुगीय - साधन। इसका आगे विश्लेषण किया जायगा।

जैसे भी हो प्रेम-भक्तिका उदय होनेपर भक्त वृन्दावन-नटराज एवं श्रीवृन्दावनेश्वरीके ध्यानमें सदा-सर्वदाके लिये सांसारिकताका परित्याग कर तन्मय हो जाता है। अतएव यह आवश्यक प्रतीत होता है कि नाटककी भूमिका-स्थापनके सदृश यत्र-तत्र-सर्वत्र इस प्रकारका वातावरण प्रस्तुत किया जाय, जिससे भक्तिकी अजस्रस्रोतस्विनी प्रवाहित होती रहे। भक्तिके पावन वेगके आरम्भमें सद्गुरु का सान्निध्य अपेक्षित है; क्योंकि श्रीगुरुदेव भगवान के परमप्रिय और साक्षात् हरि ही हैं। उनकी कृपा ही भगवानकी कृपा है—

साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रै-
रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥
यस्य प्रसादाद् भगवत् प्रसादो
यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि।
—श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती

गुरु कृष्ण रूप हन शास्त्रेर प्रमाणे।
गुरु रूपे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे ॥

जब श्रीगुरुका इतना महत्व है तो निश्चित ही यह आवश्यक है कि सद्गुरुका चरणाश्रय करके भवसागरसे निस्तरण किया जाय। श्रीगुरुदेवकी कृपासे भक्त-संगकी प्राप्ति होती है अथवा भक्तके संगसे प्रेमभक्ति प्रदान करनेवाले श्रीगुरुदेवके चरण-कमलोंका आश्रय प्राप्त होता है। श्रीगुरुदेव या भक्तसंगकी प्राप्ति भी भगवत्कृपासे ही संभव है। श्रीगुरुदेव भी श्रेष्ठभक्त ही हैं। श्रीगुरुदेव, भक्त और भगवान अभिन्न तत्त्व है। अतः इनकी कृपा ही प्रेम-भक्ति उदयका एकमात्र कारण है।

वेदान्तमें सर्वप्रथम विषय, विषय-सम्बन्ध, प्रयोजन एवं अधिकारके विषयमें विवेचन किया जाता है। भक्ति तत्त्वके निरूपणमें भी इस अनुबंध चतुष्टयका महत्व है। अनुबंध-चतुष्टयके रूपमें इस क्षेत्रमें इस प्रकार कह सकते हैं कि यहाँ पर भगवद्भक्ति 'विषय' है। इस भक्तिका 'सम्बन्ध' भगवानसे है। भक्तिका प्रयोजन भगवत-प्रेमकी प्राप्ति है तथा भक्ति प्राप्तिका अधिकारी कौन हो सकता है, इस सम्बन्ध में भी विचार करना इस क्षेत्रके अन्तर्गत आ जाता है। उक्त अनुबन्धोंका विचार दिखलाया जा रहा है।

सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कर्त्ता, सर्वकारण-कारण, सबके आदि, स्वयं अनादि परतत्त्व वस्तु अद्वयज्ञानतत्त्व हैं। वह एक ही परतत्त्व विभिन्न प्रकारके दर्शकोंके अधिकार भेदसे त्रिविध रूपोंमें प्रतिफलित होता है। सर्वशास्त्र चूड़ामणि श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।'

अर्थात् निर्विशेष ज्ञानवादी ज्ञानदृष्टिसे उस अद्वयज्ञान परतत्त्वको निर्विशेष ब्रह्मके रूपमें देखते हैं, योगीजन उसे ही निखिल जीवोंके हृदयदेशमें उनके साक्षी और अन्तर्यामी परमात्माके रूपमें दर्शन करते हैं तथा प्रेमी भक्तजन सर्वउपाधि वर्जित केवल प्रेम-नेत्रसे अचिन्त्यशक्ति सम्पन्न, निखिल अप्राकृत सद्गुणोंके आधार सच्चिदानन्द भगवान का पूर्णतम दर्शन करते हैं।

भगवान ही अद्वयज्ञान परम तत्त्व है। परमात्मा उनका आंशिक प्रकाश है तथा ब्रह्म—उनका असम्यक खण्ड प्रकाशमात्र है। ब्रह्म दर्शन—सच्चिदानन्द भगवानके केवलमात्र चित्स्वरूपका असम्यक प्रकाश है जिसमें सत् और आनन्दका सम्पूर्ण अभाव होता है। गीताके अनुसार निखिल अप्राकृत सद्गुणोंके आश्रय परमानन्द विग्रह श्री-भगवान ही 'ब्रह्म' की प्रतिष्ठा हैं—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहं अमृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥

(गीता १४।२७)

अर्थात् 'भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं ब्रह्म की प्रतिष्ठा हूँ। इस स्थलपर श्री शङ्कराचार्यजीने 'प्रतिष्ठा' शब्द का अर्थ 'प्रतिमा' किया है। किन्तु श्रीधराचार्यने 'ब्रह्मणोऽहंप्रतिष्ठा प्रतिमा घनीभूतं ब्रह्म वाहं यथाघनीभूत-प्रकाश एव सूर्यमण्डलं तद्वत्' इस प्रकार किया है। अतएव यही कथन युक्ति सङ्गत प्रतीत होता है कि अमूर्तरूप ब्रह्म है, किन्तु घनीभूत-परब्रह्म भगवान श्रीकृष्ण ही हैं। भगवान् सत्स्वरूप, चिन्मय तथा आनन्दघनमूर्ति हैं।

अनन्त, अचिन्त्य, विचित्र शक्तियाँ भगवानकी स्वरूप भूता हैं। भगवान विभु होने पर भी उनकी मध्यमाकृति सत्य और नित्य है। मानव-मन द्वारा परिकल्पित विरोधी अनन्त गुणोंके निधि श्रीभगवान् है। उनका स्थूल-सूक्ष्म आदि किसी विशेषण द्वारा निर्देश नहीं किया जा सकता। उनका श्री विग्रह स्वप्रकाश, अखण्ड स्वरूप हैं। विग्रहवान् होकर भी प्रधान रूपसे एक विग्रह हैं। अपनी स्वरूपा शक्तिकी प्रकटरूप अधिष्ठात्री देवी श्रीमती राधिकाजीके द्वारा परिसेवित हैं। अपनी प्रभा-विशेषका विस्तार कर वे आकार, परिच्छेद एवं परिकरके साथ अपने धाममें विराजमान रहते हैं। स्वरूपशक्तिके विलाससे अद्भुत गुण-लीला आदिके द्वारा आत्माराम मुनियोंके भी चित्तको आकर्षित करते रहते हैं। इन्हींके सामान्य प्रकाश-स्थानीय ब्रह्मतत्व है। जो अपनी तटस्था शक्तिके अनन्त विलासरूप जीवोंके एकमात्र आश्रय हैं, जिनकी जड़ा शक्तिके आभाससे विश्व-प्रपञ्च प्रकट होता है, वे ही ऐश्वर्य एवं माधुर्यरूपसे अनुभूत भगवान् हैं। भगवान्के स्वरूपका श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार वर्णन किया गया है—

वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः
वासुदेवपरा योगा वासुदेवपरा क्रियाः ।
वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः,
वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः ॥
(श्रीमद्भागवत १।२।२८-२९)

अर्थात् समस्त वेद, यज्ञ, योग एवं क्रियादिक वासुदेव श्रीकृष्णपर हैं तथा समस्त ज्ञानके स्वरूपसे भी श्रीकृष्णकी ही प्राप्ति होती है। तप, धर्मादि कर्मोंका अनुष्ठान तथा समस्त गति—विधियाँ भगवान् श्रीकृष्णमें ही प्रविष्ट हो जाती हैं।

भगवान्के स्वरूपका दिग्दर्शन एकभावके द्वारा इस प्रकार कराया गया है:—

चिन्तामणिः चरणभूषणमङ्गनानाम्
शृङ्गारपुष्पतरवः तरवः सुराणाम् ।
वृन्दावने व्रजधनं ननु कामधेनु
वृन्दानि चेति सुखसिन्धु रहो विभूतिः ॥

अर्थात् वृन्दानकी विभूतिका वर्णन किस प्रकार करें, जहाँ पर चिन्तामणि स्त्रियोंके चरणोंका आभूषण हैं, कल्पवृक्ष उनके शृङ्गारसाधनके लिये पुष्प प्रस्तुत करते हैं, कामधेनुमण्डल भी उनका व्रजधन है। कहनेका तात्पर्य यह है कि वृन्दावनका ऐश्वर्य सुखका अनुपम सिन्धु है।'

इस जन्ममें अथवा किसी पूर्व जन्ममें भगवदनुरागी भक्तोंके सत्सङ्गसे हृदयमें भगवत् प्रीतिका उदय होता है। शास्त्र-मर्यादानुसार जो भक्तिकी जाती है उसे 'वैधी' भक्ति कहते हैं। उसका विवेचन पद्यावली में इस प्रकार किया गया है—

श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवत् वैयासकिः कीर्तने
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने ।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिः दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परम् ॥

उक्त वर्णनके माध्यमसे अनेक भक्तोंका दिग्दर्शन कराया गया है, जिससे पृथक्-पृथक् रूपसे वैधी भक्तिके नवधास्वरूपोंका उत्कर्ष प्रकट किया गया है।

जहाँ प्राणोंके स्वतःस्फूर्त आवेगसे भगवान्के रूप-गुण-लीला-माधुर्यकी बातें सुनकर मनमें यदि लालसाका अभ्युदय होता है, प्रियतम प्रभुके प्रति नैसर्गिक रसमयी आविष्टता दीख पड़ती है तो उसे 'रागभक्ति' कहते हैं। जैसाकि 'भक्ति रसामृतसिन्धु' में कहा गया है—

सम्यक् मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः ।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते ॥
(भक्तिरसामृत १।४।१)

अर्थात् 'चित्त जब सम्यक्रूपसे मसृण (कोमल) हो जाता है,तब अत्यधिक ममताके उत्कर्षसे घनीभूत भाव ही 'प्रेम' कहलाता है। भावदशामें मसृणता की बात सम्यक् रूपसे कही नहीं जा सकती, किन्तु प्रेममें मसृणता एवं ममत्वबोध पूर्णरूपसे प्रकट होता है।

व्रजवासियोंकी श्रीकृष्णके प्रति भक्ति 'रागभक्ति' या 'रागात्मिका भक्ति' कहलाती है। उनके अनुगत की जानेवाली भक्ति 'रागानुगा' कहलाती है। श्रीराधाके प्रेममें रागात्मिका भक्तिका उत्कर्ष चरम सीमाका है। रागानुगा भक्तिका क्रम इस प्रकार है—(१) श्रद्धा, (२) साधुसङ्ग, (३) भजन क्रिया, (४) अनर्थ निवृत्ति, (५) निष्ठा, (६) रुचि, (७) आसक्ति, (८) भाव, एवं (९) प्रेम। गाढ़ आसक्ति

का नाम ही 'भाव' है। प्रेमकी प्रथमावस्था भाव है। इसमें अश्रु-रोमाञ्च आदि प्रकट होते हैं। भावुक साधकके जीवनमें कुछ अंकुर देखकर समझा जा सकता है कि उसके हृदयमें भावोदय हो गया है। उस समय उस भक्तमें निम्नलिखित दशाओं की स्वतः स्फूर्ति होने लगती है—(१) क्षान्ति, (२) अव्यर्थकालत्व, (३) विरक्ति, (४) मानशून्यता, (५) आशाबन्ध, (६) समुत्कंठा, (७) नामगानमें सदा रुचि, (८) भगवद्गुणानुवादमें आसक्ति, (९) और भगवद्धाममें निवासके लिये प्रीति।

इस स्थल पर विचारणीय विषय है कि भगवद्धामसे तात्पर्य क्या है जिससे भक्त उस स्थान पर निवास करनेकी आकांक्षा रखता है। वृद्ध व्रजवासी जन भगवान्‌की लीलास्थलीको दिखा कर कहते हैं कि यहाँ पर गोविन्द-गोपालने अमुक अमुक लीलायें की थीं, उस समय भक्तिप्राण व्यक्ति की व्रजमें वास करनेकी लालसा जाग्रत हो जाती है। इसी कारण देखा जाता है कि बहुतसे गुणी व्यक्ति दूसरी जगहका वास परित्याग कर व्रजवास करते हैं। साधक, सिद्ध एवं नित्यसिद्ध परिकरोंमें ये समस्त गुण पूर्ण, पूर्णतर एवं पूर्णतम रूपसे अभिव्यक्त होते हैं।

प्रेम अथवा निर्मल निविड़ उज्ज्वल भाव, विभाव, अनुभाव, सात्विक एवं व्यभिचारी भावोंके संयोगसे श्रीकृष्ण-रतिमें चमत्कार आ जाता है। स्थायीभाव ही मूल भक्तिरसका उपादान है। जो अविरुद्ध या विरुद्ध समस्त भावोंको आत्मसात् कर सम्राट्‌के समान सुशोभित होता है। इस स्थायी-भावका अपर नाम है—श्रीकृष्ण-प्रीति। यह कृष्ण-प्रीति पाँच मुख्य अलौकिक रसोंका आस्वादन कराती है—(१) शान्त, (२) दास्य, (३) सख्य, (४), वात्सल्य एवं (५) माधुर्य। कृष्ण-प्रीति भक्त-चित्तको उल्लसित करती है। प्रियत्व का अभिमान जाग्रत करती है। हृदयको द्रवित करती हुई अतिशय लालसा पूर्वक श्रीकृष्णसे सम्बन्धित करती है। प्रतिक्षण निरतिशय चमत्कृति के साथ उन्मत्त बना देती है। जिस समय अतिशय उल्लास होता है, उसीका नाम 'रति' है। यही ,रति' ममत्वकी अधिकता होने पर 'प्रेम' कहलाती है। प्रेम जब संभ्रम-रहित विश्वास होता है, तब उसका नाम 'प्रणय' होता है। अतिशय प्रियत्वके अभिमानसे प्रणय-कौटिल्यका आभास ग्रहण करने पर जो भाव वैचित्र्यको ग्रहण करता है, उसका नाम है 'मान'। चित्तको द्रवित करनेवाला प्रेम स्नेह' कहलाता है। स्नेह अतिशय अभिलाषासे युक्त होने पर 'राग' रूपमें परिणित हो जाता है। 'राग' अनुरागका रूप धारण करता हुआ नवीन अनुभवों को कराता है। इसमें प्रिया एवं प्रियके प्रेमवैचित्र्य का अनुभव होता है तथा प्रियके सम्बन्धसे अप्राणीमें भी जन्म लेनेकी लालसा जाग्रत होती है। अनुराग की दशामें जब भक्त उन्मादयुक्त हो जाता है तो उस दशाको 'महाभाव' की दशा कहते हैं। महाभावकी दशा जहाँ पर कि प्रिया-प्रियिका मिलन है, वहाँ पलक का विक्षेप भी असह्य हो जाता है तथा क्षणिक विरह भी कल्प सदृश प्रतीत होने लगता है। महाभाव रूपिणी राधा श्रीकृष्णके प्रेयसी-समुदायमें अग्रगण्य हैं। परम सुन्दर नन्दनन्दन श्री-कृष्ण श्रीराधाके प्रेमके आलम्बन हैं। श्रीराधा

मधुर रसका श्रेष्ठतम आश्रय हैं। श्रीराधा-गोविन्द की परस्पर रति इतनी प्रगाढ़ है कि सजातीय अथवा विजातीय किसी भी भावके समावेशसे कहीं भी कभी भी उसमें व्याघात उत्पन्न नहीं होता। यथा—

इतोऽदूरे राज्ञी स्फुरति परितो मित्रपटली,
दृशोरग्रे चन्द्रावलिः उपरी शैलस्य वनुजः।
असव्ये राधायां कुसुमितलतासंवृततनौ।
दृगन्तश्रीर्लोला तडिदिव मुकुन्दस्य बलते॥
(भक्तिरसामृत. ३।५।७)

"अदूरवर्ती माता यशोदा हैं। चारों ओर सखा-गण सुशोभित हैं। नेत्रोंके सन्मुख चन्द्रावली है। समीपस्थ पर्वत भद्र पर अरिष्टासुर है। फिर भी दाहिने कुसुमित लतासे आवृत तनु श्रीराधाके प्रति मुकुन्द भगवान्‌की चंचल दृष्टि बारम्बार विद्युत सदृश पड़ रही है।" भगवान् श्रीकृष्णकी स्वयंरूपा शक्ति भी त्रिविभागोंमें विभाजित है—(१) ह्लादनी, (२) संवित और (३) संधिनी। इन समस्त शक्तियोंमें भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनके भक्तोंका सुख विधान करने वाली शक्ति तो केवल 'ह्लादनी'शक्ति ही है। इसका साररूप भाव 'मादन' नामक भाव कहलाता है जिसमें समस्त भावोंके उत्पादन करनेकी सामर्थ्य है। यह महाभावस्वरूपा श्रीराधाका असाधारण गुण है। अतएव श्रीराधा के भावका नाम है—'मादनाख्य महाभाव'।

महाभाववती वृषभानुसुता श्रीराधाका जो प्रेम-परिपाक अधिरूढ़ अवस्थामें परमानन्दघन गोविन्द को सम्यक सन्तोष प्रदान करनेमें समर्थ है तथा जिस प्रेमको मध्यस्थ करके श्रीराधा एवं श्रीगोविन्द की एकात्मकता है, उस प्रेम-भक्तिको प्राप्त करनेके लिये श्रीराधाकी सखियोंका आनुगत्य आवश्यक है। इस भक्तिका अनुशीलन करते समय श्रीराधा-कृष्ण युगलकी अष्टयाम-सेवा प्राप्त कर जीवकी सद्गति हो सकती है। क्योंकि—

केवलेन हि भावेन गोप्यः गावो नगाः मृगाः।
येऽन्ये मूढ़धियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा॥
(भा० १७।१२।८)

अर्थात् 'केवल भक्तिभावके द्वारा गोपी गण, गोगण, यमलार्जुन आदि वृक्ष, पर्वत एवं व्रज-मृगादि पशु, कालिय आदि नाग तथा हतबुद्धि जीव मुझको अनायास ही प्राप्त कर गये। कहने का तात्पर्य यह है कि माहाभावका माहात्म्य सर्वोत्कृष्ट है। क्योंकि जब स्थावर एवं जङ्गमादिक समस्त जीवों की इदृशी स्थिति हो जाती है, तो हम भगवत भक्ति को बलिष्ठ एवं चमत्कारोत्पादनी कैसे नहीं मान सकते। भगवान् अपने भक्तके महाभावमय रूपका अवलोकन करनेके लिये ही संसारमें अवतीर्ण होते हैं। प्रपंचातीत भगवद्धामसे भगवत्स्वरूपका प्राकृत जगत्‌में अवतरण ही 'अवतार' कहलाता है। अवतार शब्दका अर्थ केवल भगवदंश ही नहीं है। वराहपुराणमें अंश एवं अंशी अथवा अवतार एवं अवतारोके स्वरूपका इस प्रकार प्रदर्शन किया गया है—

स्वांशश्चाथ विभिन्नांश इति द्वेधांश इष्यते।
अंशिनो यत्तु सामर्थ्यं यत् स्वरूपं यथास्थितिः॥
तदेव नानुमात्रोऽपि भेदः स्वांशांशिनो क्वचित्।
विभिन्नांशोऽल्पशक्तिः स्यात् किञ्चित् सामर्थ्यमात्रयुक्॥

अंश और अंशीकी एकता सामर्थ्यके रूपमें निर्विवाद है। किन्तु फिर भी अंश एवं अंशीका

तारतम्य अवश्य है। उदाहरणके रूपमें श्रीकृष्ण अखण्ड तेजोराशि सदृश हैं। मत्स्यादि स्वांश तेजोराशिके अंश तुल्य हैं और जीव खद्योत तुल्य है।

कहनेका तात्पर्य यह है कि अखण्ड तेजोराशि श्रीकृष्ण सच्चित्‌रूप हैं तथा श्रीराधा आनन्दरूपणी हैं। राधाकृष्ण एक ही तत्व है जो रसास्वादनके लिये दो रूपोंमें प्रकटित हुए हैं; जिससे परस्पर भावकी तन्मयता प्रकृष्ट रूपमें हो सके। यही उज्ज्वल या मधुर भक्तिका निष्कर्ष है।

—केशवदेव शर्मा 'वेदान्ताचार्य' एम. ए. पी.-एच. डी.

श्रीश्री व्यासपूजाके अवसर पर

श्रील आचार्यदेवका भाषण

वैष्णवोंका तिरोभाव भी विश्वके मङ्गलके लिये होता है

विश्वका कल्याण हो—ऐसा विचार करके ही वैष्णवगण अन्तर्हित होते हैं। हम लोग प्रतिदिन श्रील प्रभुपादका आरती-कीर्तन किया करते हैं। उनकी अप्रकटलीला जगतके ध्वंसके लिये नहीं है। वे जिस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये जगतमें आगमन करते हैं, लीला संवरणकालमें भी उसी उद्देश्यकी पूर्ति करते हैं। प्रकटकालमें उन्होंने समग्र विश्वभरमें भक्तिधर्मका प्रचार किया और पुनः अप्रकट होकर भी शिष्यवर्गके द्वारा उसी भक्तिका ही सर्वत्र प्रचार कर रहे हैं। यह कार्य पहले जिस प्रकार कल्याण जनक था, आज भी उसी प्रकार कल्याणजनक है।

आविर्भाव-उत्सवको तो सहज ही समझा जा सकता है। परन्तु तिरोभाव भी क्या कोई उत्सव है? 'उत्सव' शब्दका अर्थ तो आनन्द है। अतएव आविर्भाव और तिरोभाव ये दोनों ही किस प्रकार आनन्ददायक हो सकते हैं? वैष्णवोंका यह एक परम चमत्कारपूर्ण विचार है।

जिससे सारे दुख दूर हो जाँय—वही आनन्द है। मृत्यु-घटनासे हम मोहित हो कर मायासे आच्छन्न हो पड़ते हैं। किन्तु वैष्णव महाजनोंके अन्तर्हित होने पर जो दुःख होता है, उसमें माया आक्रमण नहीं कर पाती है। ऐसा होनेमें ही आनन्द है। इसमें मायाको ही सोलह आना निरानन्द प्राप्त हुआ। क्योंकि उसे आक्रमण करने का सुयोग नहीं मिला।

पाषण्डगण ही संसारके परिपोषक हैं

न्यायशास्त्रमें 'मृग-तृष्णिका' नामक एक न्याय प्रचलित है। सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंके प्रखर तापसे मरुभूमि धूँ-धूँ कर रही है, छायाके नाम पर कहीं भी कोई वृक्ष या लता दीख नहीं पड़ती। खोजने पर भी वहाँ जलका एक बूँद भी नहीं मिलता। प्याससे मानो प्राण निकले जा रहे हैं। इस समय प्रतप्त-सूर्य-किरणें सागरकी लहरोंकी भाँति लहराती रहती हैं जिसे दूरसे जलका ही भ्रम होता है। मृग यदि प्यासे

पशु उसे देख कर ऐसा समझते हैं कि वह निकट ही जल है और उसी आशासे वहाँ जाते हैं, परन्तु वहाँ जल कहाँ ? वे जैसे-जैसे आगे बढ़ते जाते हैं, जलकी लहरियाँ भी उतनी ही आगे-आगे सरकती हुई दिखलाई पड़ती जाती है। अंतमें उस जलती हुई बालूका राशिमें प्यास और गर्मीसे झुलस कर छट्फट् करते हुए गिर कर समाधि लाभ करते हैं। ठीक इसी प्रकार माया भी हमें सुखकी छाया दिखला कर हमें क्रमश. भवसागरकी ओर अग्रसर कर अंतमें सम्पूर्ण रूपसे निमज्जित कर देती है। जो संसार नहीं करते, वे मूर्ख हैं—ऐसी बात भगवद् विमुख पाषण्डगण ही कहते हैं। ये लोग ही मायाके प्रबल प्रचारक और पार्षद हैं—दूसरे नहीं। मायाने इन लोगोंको कह रखा है कि—तुम लोग ऐसा प्रचार करो कि संसार ही एकमात्र सुखका आगार है; ऐसा सुख कहीं भी नहीं है, सभी लोग संसार करें।' वास्तवमें संसार ही मायाका प्रधान अड्डा है।

हम लोग पृथ्वीमें सर्वत्र ही भ्रमण करते हैं। परंतु कहीं भी एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता —जहाँ बहिर्मुख गृही व्यक्ति सुखी हो। अतएव मृगतृष्णाकी भाँति मायाके राज्यमें हम जितना ही प्रवेश करेंगे, उतना अधिक कष्ट पायेंगे और मृत्युके समीप पहुँचेंगे।

घरकी बाघिनी

नया विवाह हुआ है। नई बहू घर आ गई है। सुन्दर [illegible] सजी-सजाई है, अप-टू-डेट भी है। रसोई भी सुन्दर करती है। ओह ! कितना आराम है ! परन्तु तुलसीदासजी कहते हैं—दिनको मोहिनी, रातको बाघिनी, पलक-पलक लहू चूसे। दुनियाँ सब बाउरा होकर बाघिनी घर-घर पोसे ॥' जो भगवद् विमुख हैं, कामी हैं,वे कामिनीकी खोजमें व्यस्त रहते हैं। वैसी कामिनियाँ—स्त्रियाँ दिनके समय मोहिनी मूर्ति धारण कर पुरुषोंका मन हरण करती हैं—दूसरी स्त्रियोंका मन भी हरण करती हैं। और रातमें बाघिनीका रूप धारण कर उसे निगल जाती हैं। क्या ही भीषण अवस्था है ?

घरमें हम भी रहते हैं—साधु-सन्त या सज्जन पुरुष भी निवास करते हैं परन्तु वहाँ दिनको मोहिनी नहीं होती। जहाँ यह 'दिनको मोहिनी' हो वहाँ दूरसे दण्डवत करो—भाइयों ! वहाँ कदापि नहीं जाओ।

महापुरुषोंका विचार जगतके विचारके विपरीत होता है।

महापुरुषोंके पास जानेसे उनकी बातें एक प्रकारसे Revolting प्रतीत होती हैं। परन्तु महा, पुरुष जो कुछ कहते हैं, परम कल्याणकी ही बातें कहते हैं। वे जीवन भर जीवोंका कल्याण कैसे हो —इसीकी चिन्ता करते हैं। उनकी अपनी देह-रक्षा और शरीर-धारण आदि कार्य जगतके कल्याणके लिये ही होता है। जो लोग यह कहते हैं कि सरस्वती ठाकुरके अप्रकटके पश्चात् उनके शिष्यगण परस्पर लड़ झगड़ ही रहे हैं—वे स्वयं झगड़ालू हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि विरह सुख है।

लीला-स्मरण सर्वत्र हो सकता है

एक बार श्रीश्रीप्रभुपादके किसी प्रवीण संन्यासी शिष्यने मुझसे कहा—'श्रीलप्रभुपादके समाधि-क्षेत्रमें आविर्भाव उत्सव क्यों मनाया जा रहा है ?

आप इसका प्रतिपाद करें ।' वास्तवमें यह बात ठीक नहीं । किसी भी स्थानमें लीला-स्मरण हो सकता है । वे मृत नहीं हैं, अप्रकट हैं—ऐसा कहा करते हैं ।

श्रीगुरुपूजा ही व्यासपूजा है ।

गुरुपूजा - तिथिको व्यासपूजा-तिथि कहते हैं, क्योंकि अन्वयभावसे गुरुपूजाके दिन ही व्यासदेवका आविर्भाव होता है । श्रीवास-अंगनमें श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीव्यास-पूजा सम्पन्न की थी । श्रीमन्महाप्रभुने श्रीवास पण्डितको कहा था कि आज आपके ऊपर गुरुतर भार आ पड़ा है । उसके उत्तरमें श्रीवास पण्डितने उनके श्रीचरणोंमें विनयपूर्वक यह निवेदन किया था—

तोमार प्रसादे सर्व - घरेइ आमार ।
वस्त्र, मृदंग, यज्ञ, सूत्र, घृत, गुया पान ॥
विधियोग्य यत सज्ज सर्व विद्यमान् ।
पद्धति पुस्तक मात्र मांगिया आनिब ।
कालि महाभाग्ये, व्यासपूजा देखिब ॥

(चै. च. म. ५।१२-१५)

अतएव श्रीमन्महाप्रभु और श्रीनित्यानन्दप्रभुने स्वयं श्रीव्यास-पूजाकी थी । श्रीनित्यानन्द प्रभुने व्यासपूजाकी माला महाप्रभुके गलेसे डालकर उनके चरणोंमें यह निवेदन किया था कि—आप धर्म प्रचारक हैं । जिस प्रकार भगवान वेदव्यासने समग्र पृथ्वीमें धर्मका प्रचार किया, उसी प्रकार आपने भी किया है । व्यासदेव आपके अंश हैं । मैं आपमें ही व्यासदेवकी सम्पूर्ण अवस्थिति लक्ष्य कर रहा हूँ । अतएव आप ही इस मालाके अधिकारीहैं।

व्यासपूजाकी प्राचीनता

व्यासपूजा कोई नयी पूजा नहीं है । अनेक प्राचीनकालसे ही शंकर सम्प्रदायमें श्रीव्यासपूजा चलती आ रही है । बंगदेशमें व्यासपूजाका प्रचलन अधिकरूपमें न होनेके कारण व्यासपूजा पद्धतिका ग्रन्थ सभी जगहोंमें सुलभ नहीं था । श्रीवास पण्डित के घर पर वह ग्रन्थ नहीं था उन्होंने कहीं दूसरी जगहसे मँगवा कर व्यासपूजा की थी । उस पूजाके ४०० वर्षोंके पश्चात् श्रील प्रभुपादजीने श्रीगौड़ीय समाजमें तथा समग्र बंगालमें पुनः प्रथम बार व्यास पूजा करके उसका सर्वत्र प्रचलन किया । उन्होंने इस व्यासपूजा पद्धतिका अनुसंधान करनेके लिये समग्र भारतमें भ्रमण किया था । अन्तमें उन्हें यह पद्धति ग्रन्थ दो स्थानोंमें मिला—(१) गोवर्द्धन मठ, पुरीमें तथा (२) पुष्करतीर्थके किसी एक मठमें । पुष्करतीर्थके उस मठमें उक्त पुस्तकको मैंने भी वहाँ स्वयं जाकर देखा है । श्रीश्रीभक्ति विनोद ठाकुरने उस ग्रन्थका सात्वत मतानुसार संशोधन किया है ।

इस व्यासपूजाके सम्बन्धमें आपलोग श्रील-सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद द्वारा लिखित श्रीचैतन्यभागवतके गौड़ीयभाष्यका अध्ययन करेंगे । उसमें श्रीलप्रभुपादजीने जो कुछ कहा है, उसमेंसे मैं आंशिकरूपमें यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ—'जड़-भोगकी निवृत्ति होनेपर ही जीव परिव्राजक होकर आचार्यके चरणोंमें आश्रय ग्रहण करता है उस आचार्य-चरणाश्रयको ही दूसरे शब्दोंमें 'व्यास-पूजा' कहते हैं । आर्यावर्तमें श्रीव्यासदेवके अनुगत सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त लोग वेदानुग सम्प्रदायके नामसे

प्रसिद्ध हैं। वे सभी लोग प्रत्येक वर्ष अपने-अपने जन्मके दिन पूर्व गुरुकी पूजा करेंगे।..... श्रीव्यासपूजाका नामान्तर—श्रीगुरुदेवके चरणोंमें पाद्यार्पण करना है' अथवा श्रीगुरुदेवका मनोऽभीष्ट-भगवानकी सेवा है।

—श्रीव्यासपूजाका यही उद्देश्य है।

'नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥'

इस श्लोकसे श्रीव्यासपूजाकी उत्कर्षता सूचित होती है। जिस व्यासदेवकी शिक्षाको ग्रहण करके लोग बोलना - चलना सीखते हैं, उस जगद्गुरु श्रीव्यासदेवकी लोग पूजा नहीं करते, उनके प्रति श्रद्धाभाव आदि प्रदर्शित नहीं करते—यह कितने दुःखकी बात है। हम लोग यहाँ पुनः श्रीव्यासपूजा का आयोजन करेंगे। उसमें नवद्वीपकी सारी पण्डित मण्डलीको निमन्त्रित करेंगे। वे लोग देखें कि व्यासपूजा किसे कहते हैं? पहले सरस्वतीकी पूजा करके उनकी कृपा माँगनी पड़ेगी—'आप व्यासकी शिक्षा दें। 'बड़े दुःखकी बात है कि जो हमारी संस्कृतिका मूल है, प्राण है—उसे हम पहिचानते तक नहीं।

पाश्चात्यगण व्यास-विरोधी हैं

पाश्चात्य देशोंके असभ्य एवं चरित्रहीन पण्डिताभिमानीजन वेदव्यासके सम्बन्धमें बहुत अनाप-शनाप, झूठमूठ एवं भीत्तिहीन बाते कहते हैं—"वेदव्यासको उड़ा दो, उनके विचारोंको दफना दो, क्योंकि हमारे विचारोंके प्रचारमें वे ही सबसे अधिक बाधक हैं। जबतक व्यासदेवकी किसी रूपमें सत्ता है, तबतक हमारा मार्ग निष्कंटक नहीं है। अतएव उनको अस्वीकार करो।"

व्यासदेवको भूलजाना ही भारतकी अवनतिका मूल कारण है

और लोगोंकी तो बात ही क्या, ये स्मार्त्त भी—जिनका एक क्षण भी बिना व्यासके नहीं चलता, चल नहीं सकता, दूषित वातावरणमें पड़कर कुछ असुविधा होने पर कहते हैं—यह व्यासदेवका लिखा नहीं है, यह प्रक्षिप्त है,—इत्यादि। बड़े खेदकी बात है कि भारतमें इतनी बड़ी-बड़ी युनिवर्सिटियाँ (विश्वविद्यालय) स्थापित हुई तो हैं, परन्तु कहीं भी वेदव्यासकी प्रतिमूर्तिकी स्थापना या पूजा नहीं देखी जाती। फलस्वरूप सारा देश क्रमशः अधोपतन के गड्ढेमें अधिकतर गिरता जा रहा है।

शंकर सम्प्रदायमें व्यापूजा-पद्धति

व्यासपूजामें विविध पंचकोंकी पूजाकी व्यवस्था है। शंकर सम्प्रदायमें श्रीकृष्ण पंचकको वेदीके मध्य-स्थलमें तथा अन्यान्य पंचकोंको उसके चारों ओर स्थापित कर पूजा की जाती है। शंकराचार्यने भी 'भज गोविन्दं भज गोविन्दम्' का कीर्तन किया है। इस सम्प्रदायमें भी चरमावस्थामें व्यासदेवके ही सिद्धान्तोंकी प्रतिष्ठा देखी जाती है। (क्रमशः)

दैन्य निवेदन

(श्रीश्रीआचार्यदेवके शुभ-आविर्भाव तिथि-पूजाके अवसर पर)

करता हूँ मैं आज समर्पित ।
पुष्प सभी पग चन्दन चर्चित ।।
हृद्रय भाव हैं इनमें सञ्चित ।
तन, मन, धन इनमें हैं लुंठित ।।
सेवा का वरदान दान दो ।
कृष्ण प्रेमका अमित पान दो ।।
भक्तों की पद रज का इच्छुक ।
श्रीचरणों की सेवाका भिक्षुक ।।
भौतिक जगमें फँसा हुआ हूँ ।
विषय भोगसे घिरा हुआ हूँ ।।
वन्दन की क्षमता नहीं मुझमें ।
अपराधों की कमी न मुझमें ।।
पापों का हूँ आश्रय स्थल ।
छल औ पाप पनपता प्रतिपल ।।
दीन हीन का भाव दिखाता ।
हूँ गुण हीन गुणी दरशाता ।।
करो न मेरी और परीक्षा ।
भूला कंचन लोभ प्रशिक्षा ।।
निकलूँगा मैं- दुष्ट शिरोमणि ।
जो की और परीक्षा गुरुमणि ।।
करो कृपा काटो जग बन्धन ।
करता अधम दास अति क्रन्दन ।।
समरथ हो संशय नहीं मोरे ।
काटो विषम जाल के डोरे ।।
मैं अति नीच ज्ञान अज्ञानी ।
कामी क्रोधी अरू अभिमानी ।।
जीवों के हित अवतार आपका ।
करहूँ कृपासों संहार पापका ।।
भक्ति भाव प्रभु नेकु न मोरे ।
नेकुदरश देहूँ करत निहोरे ।।
क्षण में पाप सकल नशि जैहै ।
जो लवलेश कृपा करि देहै ।।
कृष्ण प्रेम के धनिक आप हैं ।
विश्व विजय के धाम आप हैं ।।
भक्ति तत्वके राज आप हैं ।
कृष्ण विरह सिर मौर आप हैं ।।

गोपी भाव से विचरण करते।
भक्ति भाव का वितरण करते॥
हरिनाम के श्रेष्ठ प्रचारक।
विमुख जनोंके श्रेष्ठ उद्धारक॥
भक्ति राज्य के कुशल प्रणेता।
आप विश्व के अखिल सचेता॥
जन जीवन को प्रेम प्रदाता।
हृदय आपका स्वच्छ सुभाता॥
क्षण - क्षण में हरि प्रेम लुटाते॥
मधुर - मधुर आसव बरसाते॥
करते जीव सप्रेम अवगाहन।
हृदय सरल होता तज पाहन॥
अहोभाग्य मेरा जो पाया।
चरण शरण का धाम सुहाया॥
करुणा के सागर गुरुवर तुम।
दीनों के सच्चे हितकर तुम॥
मैं पुष्प खिला था बनमें।
टूट मिला नलिका के कणमें॥
गन्दा नीर भरा था जिसमें।
पड़ा हुआ गलता था उसमें॥
होकर दया परायण तुमने।
उठा लिया निजकर प्रभु तुमने॥
देकर पद पराग स्पर्शन।
किया कृष्ण चरण पुनि अर्पण॥
कितना हृदय दयाका सागर।
मैं हूँ केवल खाली गागर॥
हूँ मैं ऋणी सर्वदा स्वामी।
जानत हो सब अन्तरयामी॥
कुटिल जन्मसे सब जानत हो।
फिर भी दास मुझे मानत हो॥
भूल ना जाऊँ वरद आपका।
फूटे घट जो भरा पापका॥
इसी दिवस के लिये तोड़के।
लाया हूँ कुछ पुष्प जोड़के॥
करो इन्हें स्वीकार नाथ मम।
कौन दयालु स्वामी आप सम॥
कृष्ण - कृपाके हे ! मूर्ति घन।
करो स्वीकार यह तुच्छ समर्पण॥

—सत्यपाल ब्रह्मचारी एम. ए.

प्रचार-प्रसंग

जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुरका तिरोभाव महोत्सव

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभी शाखामठोंमें विगत ३ आषाढ़, १८ जून १९६६ को आधुनिक युगमें श्रीरूपानुग-धाराको इस जगतमें पुनःप्रवाहित करने वाले सप्तम गोस्वामी श्रीसच्चिदानन्द भक्ति विनोद ठाकुरका तिरोभाव महोत्सव बड़े समारोहके साथ मनाया गया है। श्री उद्धारण गौड़ीय मठ चुचुड़ा (प० बङ्गाल) में परमाराध्यतम श्रील आचार्यदेवके सभापतित्वमें एक महती धर्म-सभाका आयोजन किया गया था, जिसमें त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त वामन महाराज, त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त उर्द्धमन्थी महाराजने और अंतमें श्रील आचार्य देवने श्रील ठाकुरके अलौकिक जीवन चरित्र और उनकी अप्राकृत शिक्षाओंके सम्बन्धमें सारगर्भित एवं महत्वपूर्ण भाषण दिया।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें भी उक्त दिवस विरह-महोत्सवका आयोजन किया गया था। सबेरेसे ही श्रील ठाकुर महाराजके रचित शरणागति आदिका कीर्तन, विभिन्न ग्रन्थोंसे उनकी जीवनी का पाठ, दोप्रहरके समय विशेषरूपसे भोगराग और आरती, प्रसाद वितरण, तथा शामको एक धर्मसभा में त्रिदण्डीस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त भिक्षु महाराज और त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजने श्रील ठाकुरके जीवन-चरित्र और शिक्षाओं पर प्रकाश डाला।

श्रीरथ-यात्रा महोत्सव

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुचुड़ा में (प० बङ्गाल) गत ३ आषाढ़से १३ आषाढ़ तक श्रीश्री-जगन्नाथ देवका श्रीरथयात्रा महोत्सव महासमारोहके साथ सम्पन्न हुआ है। इस वर्ष श्रील आचार्यदेव इस महोत्सव कालमें स्वयं विराजमान रहनेके कारण यह महोत्सव विशेष उत्साहके साथ सम्पन्न हुआ है। ४ आषाढ़को श्रीगुण्डिचा मार्जन, ५ आषाढ़को श्रीश्रीरथ-यात्रा, ९ आषाढ़को श्रीहेरा पंचमी या श्रीलक्ष्मी-विजय तथा १३ आषाढ़को पूर्ण यात्राके महोत्सव मनाये गये हैं। उत्सवकालमें श्रील आचार्यदेव के अतिरिक्त, श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त उर्द्धमन्थी महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराज आदि त्रिदण्डि चरणोंके प्रवचन, कीर्तन, छाया-चित्र द्वारा श्रीगौर लीला और कृष्ण लीलाकी विविध निगूढ़ शिक्षाओंके सम्बन्धमें भाषण आदि हुए हैं। प्रथम रथयात्रा, श्रीहेरा पंचमी और पूर्ण रथ-यात्राके दिन महोत्सवमें प्रसाद वितरण किया गया। अंतिम दिन पूर्ण रथ-यात्राके दिन हजारों लोगोंको महाप्रसाद खिलाया गया तथा अधिकांश लोगोंको प्रसाद बाँटा गया है।

विभिन्न स्थानोंमें प्रचार

समितिकी बङ्गला पत्रिका श्रीगौड़ीय पत्रिकाके सम्पादक त्रिदण्डि स्वामी भक्ति वेदान्त वामन महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्ति वेदान्त त्रिदण्डी महाराज, कीर्तनिया श्रीमुकुन्दगोपाल ब्रह्मचारी, श्री कानाई ब्रह्मचारी, श्री मुरली मोहन ब्रह्मचारी, श्री मदनमोहन ब्रह्मचारी आदि बङ्गालके २४ परगना और मेदनीपुर जिलेके अनेक स्थानोंमें शुद्ध भक्तिका प्रबल रूपसे प्रचार कर अब संथाल परगना (बिहार) के विभिन्न स्थानोंमें प्रचार कर रहे हैं।

त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त पर्वटक महारज पाँच-छः ब्रह्मचारियोंके साथ पश्चिमोत्तर बङ्गालके शिलीगुड़ी, जलपाईगुड़ी, दार्जिलिंग, कुचबिहार, आदि विभन्न स्थानोंमें शुद्ध भक्तिका प्रबल रूपसे प्रचार कर रहे हैं। अब वे क्रमशः आसामकी ओर बढ़ रहे हैं।